वीर संवत २४९२, माघ कृष्णपक्ष ७, शनिवार

दि.१२-२-१९६६, गाथा ३, ४, प्रवचन नं.-२४

'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' है। पंडित हुए हैं, दिगम्बर पंडित। करीब २०० वर्ष पहले (हुए हैं)। उन्होंने शास्त्रमें से संक्षिप्त में सार-सार न्याय निकालकर 'छहढाला' बनाई है। चौथी ढाल चलती है, सम्यग्ज्ञान की चलती है। देखो ! उन्होंने शास्त्रमें से निकाला है, अपने घर का कुछ नहीं है। जो संतो ने, मुनियों ने, ज्ञानियों ने जो बात शास्त्र में विस्तार से कही है, उसे संक्षेप में लिखा है। उसे ऐसा कहने में आता है कि गागर में सागर भर दिया। बहुत संक्षेप में बात है, लेकिन उसमें सार है। देखो ! क्या कहते हैं ? अपने यहाँ तक आया है।

सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान होता नहीं और चारित्र होता नहीं, यह बात पहले आ गई है। तीसरी ढाल में आया न ? तीसरी (ढाल)। '**या बिन ज्ञान चरित्रा।**'

मोक्षमहलकी परथम सीढी, या बिन ज्ञान चरित्रा;
सम्यक्ता न लहैं, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।

तीसरी ढाल का १७ वां श्लोक है। समझ में आया ? यह चीज़ क्या है ? अनंतकाल में समझ में आया नहीं। सम्यग्दर्शन बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता और सम्यग्ज्ञान बिना व्रत और तप सच्चा होता नहीं। पुण्य बँध जाये, राग मंद हो (तो) पुण्य बँध जाये, उससे स्वर्गादि (मिले), पैसा मिले (परन्तु) आत्मज्ञान बिना जन्म-मरण का अंत नहीं आता। वह आगे कहेंगे। समझ में आया ? यह आत्मज्ञान सम्यग्दर्शन बिना होता नहीं। यह बात पहली (है)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना, सम्यग्दर्शन बिना सम्यग्ज्ञान और चारित्र को सम्यक्ता लागू होती ही नहीं। यह पहले कह गये हैं। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, वह बात कह गये हैं।

अपना आत्मा परद्रव्य से भिन्न आत्मरुचि भली है। आया है या नहीं ? थोडी बात कंठस्थ

है, थोडी बात है, पूरी नहीं है। (हमारे इस भाई को) सारा कंठस्थ है। अपने प्रमुख है न ? (उनको) सारा कंठस्थ, सारा कंठस्थ (है)। समझ में आया ? पहले आ गया है। आत्मद्रव्य, परद्रव्य से भिन्न (है) यह पहले आ गया है। भगवान आत्मा..! आत्मा अर्थात् क्या ? उसमें अनंत ज्ञान, अनंत शांति, अनंत आनंद अंतर में पडा है। ऐसे आत्मा की परपदार्थ से भिन्न (रुचि)। शरीर से, कर्म से, पुण्य-पाप के भाव होते हैं वे विकार, आस्रव हैं उनसे भी भिन्न, अपना शुद्धस्वरूप का अंतर में सम्यग्ज्ञानपूर्वक अंतरदृष्टि होना। ज्ञानपूर्वक का अर्थ क्या ? अनुभवपूर्वक। अन्दर यह आत्मा ऐसा है। शुद्ध चिदानन्द स्वरूप (है), ऐसे भानपूर्वक प्रतीति होनी, उसका नाम सम्यग्दर्शन (है)। अनंतकाल में नहीं प्रकट की ऐसी चीज है। समझ में आया ? ऐसा सम्यग्दर्शन हो तो भी ज्ञान की आराधना भिन्न करनी चाहिए, यह बात चलती है।

सम्यग्दर्शन हो तो भी सम्यग्ज्ञान (की) नर्मलता विशेष करने के लिये शास्त्र का, तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए। ज्ञान तो आत्मा का है, लेकिन उस ज्ञान में निर्मलता लाने को सम्यग्दर्शन होने के बाद चारित्र और व्रत लेने से पहले, ऐसे सम्यग्ज्ञान का विशेष आराधन, सेवन पहले करना चाहिए क्योंकि सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान होता नहीं और ज्ञान आया तो ज्ञान की आराधना विशेष करना।

अब, यहाँ कहते हैं, देखो ! सम्यग्दर्शन को कारण कहा है, सम्यग्ज्ञान को कार्य। कहते हैं कि, '**सम्यग्दर्शन निमित्तकारण है...**' दूसरा पेरेग्राफ है। '**तथा सम्यग्दर्शन निमित्तकारण है...**' यह बात थोडी सूक्ष्म है। आत्मा अंतर में पुण्य-पाप के भाव से भिन्न, शरीर से भिन्न, आत्मा आनंदस्वरूप है - ऐसी अंतर में प्रतीति सम्यग्दर्शन का होना, यह कारण है और साथ में सम्यग्ज्ञान होना, यह कार्य है। दोनों है तो पर्याय। आत्मा की सम्यग्दर्शन - धर्म की पहली पर्याय हो यह है तो पर्याय और साथ में ज्ञान उत्पन्न होता है, वह भी है तो पर्याय, लेकिन जैसे दीपक पहले होता है तो दीपक के पीछे प्रकाश-उसका कार्य उत्पन्न (होता है)। वैसे उत्पन्न तो साथ में होता है, परंतु दीपक को कारण कहते हैं और प्रकाश को कार्य कहते हैं। ऐसे भगवान आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप के अनुभव में प्रतीत करने के साथ ज्ञान उत्पन्न होता है, परंतु उस ज्ञान को कार्य कहते हैं और दर्शन को कारण कहते हैं।

मुमुक्षु :- ज्ञान साध्य...

उत्तर :- साध्य-साधन का यहाँ काम नहीं है। यहाँ तो कारण की बात है।

'**सम्यग्दर्शन निमित्तकारण है...**' इस पर वजन है। सुनो ! आत्मा में... पर्याय तो आत्मा की दोनों हैं, एक पर्याय को कारण कहा और दूसरी पर्याय को कार्य कहा। क्यों कहा ? उसका स्पष्टीकरण चलता है। बहुत सूक्ष्म (है)। अनंत काल में अनंत भव हुए, नरक के अनंत, पशु के अनंत, मनुष्य में भी अरबोंपति अनंतबार हुआ और भिखारी भी अनंत बार हुआ, वह कोई नयी चीज़ नहीं है और स्वर्ग में भी अनंतबार उत्पन्न हुआ, नौंवी ग्रैवेयक भी अनंतबार सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना (गया)। यह बाद में आयेगा। 'कोटी जन्म तप तपै' परंतु आत्मज्ञान बिना जन्म-मरण का नाश होता नहीं।

कहते हैं कि, पहले सम्यग्दर्शन को निमित्तकारण कहा। क्यों ? कि, वह है तो अपनी पर्याय और ज्ञान भी अपनी पर्याय है, तो पर्याय-पर्याय में कारण कार्य कहना, सम्यग्दर्शन की पर्याय निमित्तकारण है, ज्ञान की पर्याय नैमित्तिक कार्य है। क्या कहा,समझ में आया ? भगवान आत्मा शुद्ध चिदानंद का सम्यग्दर्शन गृहस्थाश्रम में भी होता है। राजपाट हो, 'भरत' चक्रवर्ती को ९६ हजार स्त्री और ९६ करोड़ सैनिक। वह हमारी चीज़ नहीं, हमारी चीज़ तो अन्तरमें है। उसमें अनंत आनंद और अनन्त ज्ञान भरा है। ऐसा अंतर में अनुभव में प्रतीत हुई, तो कहते हैं कि, वह प्रतीति है तो आत्मा की पर्याय। पर्याय समझते हो ? पर्याय सुनी न हो। अवस्था। आत्मा त्रिकाली वस्तु है। ज्ञान, आनंद आदि त्रिकाली गुण हैं और यह सम्यग्दर्शन उसकी वर्तमान हालत-पर्याय है। क्यों, बराबर है ? युवान के पास तो हाँ कहलावे और क्या करे ? कैसे है ?

भगवान आत्मा... ! यह (शरीर) तो रजकण जड़ मिट्टी है। अंदर शुभ-अशुभभाव होता है वह तो विकार, बंध कारण है। उससे भिन्न भगवान आत्मा का अन्तर में अनुभव करके सम्यग्दर्शन करना। वह सम्यग्दर्शन है तो आत्मा की अवस्था। अवस्था (अर्थात्) पर्याय, कार्य, अवस्था। परंतु सम्यग्दर्शन की पर्याय को कारण कहा। तो क्या कारण ? उपादान कारण है ? उपादानकारण क्या ? उपादानकारण तो आत्मद्रव्य है, उसमें से सम्यग्दर्शन

पर्याय उत्पन्न होती है और सम्यग्ज्ञान की पर्याय भी आत्मद्रव्य की उपादान-मूल कारण से पर्याय उत्पन्न (होती है)। आत्मद्रव्यमें से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान (की) पर्याय होती हैं। समझ में आया ?

ये सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान धर्म की अवस्था रागमें से, कर्ममें से, शरीरमें से, परमें से नहीं आती है। सम्यग्दर्शन पर्याय और सम्यग्ज्ञान अवस्था आत्मा वस्तु है, उसमें से आती है। जिसमें पानी भरा है। उसमें से प्रवाह आता है। प्रवाह। भगवान आत्मा में अनंत ज्ञान, अनंत श्रद्धा की शक्ति आदि अन्दर में पडी है। समझ में आया ? उसमें से सम्यग्दर्शन की (पर्याय उत्पन्न होती है)। सम्यग्दर्शन का उपादानकारण द्रव्य है। उपादान समझे ? मूल कारण। और सम्यग्ज्ञान जो उत्पन्न हुआ, आत्मा क्या ? आत्मा ज्ञानमय, अनंत आनंदमय शुद्ध (है), ऐसा भान (हुआ वह) सम्यग्ज्ञान, इस सम्यग्ज्ञान का उपादानकारण तो आत्मा का ज्ञानगुण है, आत्मा है। दोनों एक ही बात है। उसमें से सम्यग्ज्ञान की पर्याय आती है। सम्यग्ज्ञान की पर्याय राग में से नहीं आती, पूर्व की पर्यायमें से नहीं आती। क्या पूर्व पर्याय... इसमें कितना समझना ? समझ में आया ? संसार में पाप के लिये कितना समझता है ? पाप के लिये पाप है ? क्या है उसमें ? पाप है ? ये सब मकान बनाना, दो-पाँच करोड कमाना अकेला पाप है।

मुमुक्षु :- सुख है।

उत्तर :- दु:ख है, धूल में सुख है ? उसे पैसेवाले को सुखी मानना है। समझ में आया ? दु:ख है, बिलकुल दु:ख है। परपदार्थ की ममता-यह मेरा, मैं उसका यह मिथ्यात्वभाव है; साथ में राग और आकुलता होती है। वह दु:ख है। क्या करे ? अनंतकाल में अपनी चीज़ में आनंद है (उसे जाना नहीं)। आगे कहेंगे। **'ज्ञान समान न आन जगत में'** यह आथा है। दूसरे में सुख नहीं है। समझ में आया ? चौथी गाथा में आयेगा। **'ज्ञान समान न आन जगत में सुखको कारन,...'** चौथी गाथा है न ? भाई ! चौथी (गाथा है)। इसमें ९८ (पन्ना) है। अपने दूसरी (गाथा) चलती है। समझ में आता है ? चौथी में है।

ज्ञान समान व आन जगत में सुखको कारन,
इहि परमामृत जन्मजरामृति रोग निवारन।

समझ में आया ? दुनिया में, पैसे में, धूल में कोई सुख नहीं है – ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :– कब ?

उत्तर :– अभी। कब क्या ?

'**ज्ञान समान न आन जगत में सुखको कारन,...**' यह ज्ञान कौन ? आत्मा का ज्ञान। आत्मा शुद्ध आननंदस्वरूप है, उसका ज्ञान, इसके समान जगत में सुख का कारण और कोई नहीं। क्या आया ? पुण्यभाव उत्पन्न होता है, वह भी सुख का कारण नहीं – ऐसा बताते हैं। समझ में आया ? आहा..हा... ! यह तो सादी भाषा में हिन्दी में 'दौलतरामजी' ने 'छहढाला' बनाई। उसका भी अभ्यास नहीं, विचार नहीं, मनन नहीं और आत्मा को कल्याण हो जाये, कहाँ से कल्याण होगा ? सत्य के भान बिना और सत्य की पहिचान बिना कभी कल्याण होता नहीं।

कहते हैं कि, आत्मा में जो शुद्धस्वभाव की श्रद्धा हुई, वह सम्यग्दर्शन (है)। उसे निमित्तकारण कहा, क्योंकि पर्याय है। और ज्ञान जो प्रकट हुआ वह भी है तो आत्मा की अवस्था, परंतु (श्रद्धा की पर्याय को) निमित्त (कहा) तो (ज्ञान की पर्याय को) नैमित्तिक (कहा)। समझ में आया ? कार्य को नैमित्तिक (कहा), कारण को निमित्त (कहा)। क्योंकि उपादान कारण तो है नहीं। दर्शनपर्याय में से ज्ञानपर्याय आती है – ऐसा है नहीं। भगवान आत्मा में अंदर श्रद्धागुण त्रिकाल पडा है उसमें से श्रद्धापर्याय अंतरदृष्टि करने से आती है और ज्ञानपर्याय अंदर ज्ञानगुणमें से सम्यग्ज्ञान पर्याय आती है। यहाँ ज्ञान का मूल कारण सम्यग्दर्शन नहीं है। ज्ञान का मूल कारण तो आत्मद्रव्य है, परंतु सम्यग्दर्शन को कारण कहा वह निमित्तकारण है। निमित्तकारण (अर्थात्) सहचर–साथ में है। निमित्तकारण सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान उसका नैमित्तिक कार्य। है तो दोनों पर्याय, दो हालत, दो दशा। भाई ! क्या करना ? भाषा कोई भी हो लेकिन भाव तो जो है, वही आये न। भाव क्या उसमें दूसरा आता है ?

मुमुक्षु :– ... जो पर्याय में हुआ वह उपादान है न ?

उत्तर :– उपादान की अनंती पर्याय (है), उसमें से एक पर्याय को निमित्त और दूसरे को

नैमित्तिक – ऐसा कहने में आता है। आहा..हा... !

मुमुक्षु :– मात्र कहने के लिए है ?

उत्तर :– नहीं, ऐसा है। मात्र कहने के लिये नहीं है। कोई गुण की पर्याय अन्य कोई गुण का उपादान नहीं है, वह बात बतानी है। क्या (कहा) ? आत्मा वस्तु है, उसमें अनंत गुण पडे हैं। उसका भान होकर दर्शन–ज्ञान हुआ तो एक पर्याय का दूसरी पर्याय मूल कारण नहीं। ऐसे एक गुण का दूसरा गुण मूल कारण नहीं। मूल कारण नहीं है और उसे कारण कहना, वह तो निमित्तकारण (हो गया)। जिसे आत्मा का सुख चाहिए उसे समझना पडेगा। चार गति में भटकना हो (तो) भटकते तो हैं, उसमें नयी क्या चीज़ है ? चौरासी के अवतार में अनादि से भटकता है। नरक, निगोद, स्वर्ग, सेठाई सब भटकने का पंथ, परिभ्रमण का (कारण) है। उसमें कोई आत्मा धर्म नहीं है। आहा..हा... !

कहते हैं, '**सम्यग्दर्शन निमित्तकारण है...**' क्यों ? कि, आत्मा की सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दो अवस्था हैं। दो अवस्था का मूल कारण तो आत्मा है। एक पर्याय को कारण कहा और दूसरी पर्याय को कार्य कहा, वह निमित्तकारण और निमित्त कार्य की अपेक्षा से कहा है। '**इस प्रकार इन दोनों में कारण-कार्यभाव से भी अन्तर है।**' दर्शन है वह श्रद्धा से ही प्राप्त होता है और ज्ञानगुण से प्राप्त होता है। सम्यग्ज्ञान दर्शनपर्याय से उत्पन्न होता है – ऐसा नहीं। आहा..हा... !

वैसे ही सम्यक्चारित्र भी दर्शन है, ज्ञान है उसमें से उत्पन्न नहीं होता। सम्यक्चारित्र वीतराग अवस्था, आत्मा अंतर में एकाग्र होकर अंतर आत्मा में वीतरागता नाम का चारित्रगुण पडा है, उसमें एकाग्र होकर वीतराग पर्याय का उपादानकारण आत्मा है, परन्तु चारित्र को कार्य कहते हैं और सम्यग्दर्शन–ज्ञान को कारण कहते हैं। यह आता है, आया है कहीं पर ? कहाँ ? नहीं, पता नहीं है। 'समयसार' में बंधकारण, 'बंध अधिकार' में आया है। 'समयसार' में 'बंध अधिकार'। सम्यग्दर्शन–ज्ञान कारण और सम्यक्चारित्र कार्य। समझ में आया ? यहाँ तो अपने दर्शन और ज्ञान केसाथ बात लेनी है। समझ में आया ? बंध... बंध (अधिकार) न ?'**अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि ही है क्योंकि (वह) निश्चयचारित्र के कारणरूप**

ज्ञान-श्रद्धान से शून्य है।' २७३ गाथा है। 'समयसार' 'बंध अधिकार' की २७३ (गाथा है)। क्या कहते हैं उसमें ?

शील पालता है, तप करता है, गुप्ति पालता है, समिति पालता है और महाव्रत पालता है, फिर भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान के कारण बिना चारित्रपना उसे होता नहीं। २७३ गाथा है। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी। दृष्टि में मिथ्यात्व है, आत्मा की श्रद्धा नहीं, और अज्ञान है-आत्मा का ज्ञान नहीं है तो उसके जो पंच महाव्रतादि परिणाम हैं, वे ज्ञान-श्रद्धा से शून्य हैं। निश्चयचारित्र का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान। निश्चय स्वरूप की रमणता, आनंद की रमणता-चारित्र का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान (है)। यह कारण नहीं है तो सब शून्य है। वहाँ सम्यक्चारित्र का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान को कहा। यहाँ सम्यग्ज्ञान का कारण सम्यग्दर्शन कहा। आहा..हा... ! समझ में आता है ? यहाँ तो बहुतबार आ गया है, चौदह बार प्रवचन हो चुके हैं। यह 'समयसार' तो सभा में (चौदह बार) पढा है। यहाँ बहुत बार पढा है। इसलिए बहुत लोगों को याद है - ऐसा कहने का आशय है। समझ में आया ? चौदहवीं बार पढते हैं। यहाँ (एक मुमुक्षु) थे न ? 'जयपुर'वाले हैं न ? आसो कृष्णपक्ष १०, (संवत) २०१८ की साल। आखिर में चौदहवी बार शुरू किया था। यहाँ मकान का वास्तु था न ? २०१८ की साल, आसो कृष्णपक्ष। हमारी, आप की कार्तिक वदी कहते हैं। दसमी के दिन चौदहवीं बार शुरू किया था। (एक मुमुक्षु ने) उसमें चौदह हजार दिये थे न ? चौदहवीं बार 'समयसार' चलता है तो चौदह हजार देते हैं। यहाँ थे न ? 'जयपुर'वाले हैं। जोहरी। चौदह बार तो सभा में पूरे शास्त्र कास्पष्टीकरण चला है।

वहाँ ऐसा कहा कि, आत्मा में जब तक सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं होता, तब तक व्रतादि की क्रिया चारित्र को प्राप्त होती नहीं, क्योंकि चारित्र का मूल कारण सम्यक् शांति का (कारण), चारित्र अर्थात् वीतराग आनंद, वीतराग आनंद का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं है तो चारित्र होता नहीं। वहाँ चारित्र में सम्यग्दर्शन ज्ञान को कारण कहा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान निमित्तकारण है और चारित्र नैमित्तिक कार्य है। कठिन बात है, भाई ! तत्त्व का अभ्यास (कठिन बहुत है)। अनंत काल में मेरी चीज़ को लाभ कैसे हो - ऐसी दरकार से कभी किया ही नहीं। अंधश्रद्धा, अज्ञानपने अनंतकाल गँवाया। समझ में आया ? 'छहढाला' में इसी में पहले कहा था न ? पहली ढाल में ही नरक के दु:ख का वर्णन किया है। बहुत नरक का दु:ख है। ओ..ह..हो... !

भगवान ! तेरे आत्मा की अंतरदृष्टि के भान बिना तूने अनन्तबार नरक में इतना दुःख सहन किया। पहली ढाल में आया है। नरकयोनि नीचे है। सात नरक है, नीचे सात पाताल हैं। समझ में आया ? हंबग नहीं है। प्रत्येक नरक में आत्मदर्शन बिना, सम्यग्दर्शन बिना अनंतबार उत्पन्न हुआ। आहा..हा...! पहले आया या नहीं ? उसमें नारकी के बहुत दृष्टान्त दिये हैं। देखो ! वहाँ भी कहा था। (दूसरी गाथा में लिखा है)।

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुःखतैं भयवन्त;
तातैं दुःखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार।।२।।

देखो ! अन्दर नरक में बहुत दृष्टान्त दिये हैं। नरक का दृष्टान्त (है), देखो ! नारकी को मारते हैं। उसे शिक्षा देते हैं। समझ में आया ? पहली ढाल में है। इसमें है। नारकी है न नारकी ? मारता है। तीसरा पन्ना, हिन्दी में तीसरा पन्ना है। देखो ! चार गति के चित्र दिये हैं। समझ में आया ? देखो ! चार गति दी हैं। इस और लकडीवाला (है वह) मनुष्य है। इस और देव है, इस ओर पशु है, इस ओर नारकी है। चारों दिये हैं। चार गति में सम्यग्दर्शन बिना अनंतबार चक्कर खाया। समझ में आया ? सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना चारों गति में (गया)। स्वर्ग भी अनंत बार मिला। पहली बार नहीं है। देखो ! स्वर्ग में देव लिया है। वहाँ देव में भी अनन्त बार गया। पुण्य किया, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा शुभभाव है, पुण्य होता है, पुण्य होता है, उससे स्वर्ग मिलता है; जन्म-मरण नहीं मिटते। पापमें से निकलकर स्वर्ग में आया इतना हुआ। फिर वहाँ से निकलकर चार गति में भटकेगा। समझ में आया ?

आत्म सम्यग्दर्शन के बिना, अंक बिना शून्य, शून्य की कीमत है नहीं। इसलिए यहाँ पहली नरक के दुःख का बहुत वर्णन किया है। खाता है, मारता है, देखो ! बहुत दुःख बताये हैं। पराधीन। सिंह मृग को खाता है, देखो ! बैल को काटते हैं। बहुत दृष्टान्त दिये हैं। समझ में आया ? नरक में आत्मा के भान बिना अनन्त बार ऐसा दुःख पाया।

कहते हैं, '**प्रश्न :- ज्ञान-श्रद्धान तो (युगपत्) एकसाथ होते हैं, तो उनमें कारण-कार्यपना क्यों कहते हो ?**' यह बात अपने कल आ गई है।

'**उत्तर :- वह हो तो वह होता है।**' दीपक हो तो प्रकाश होता है, सम्यग्दर्शन हो तो ज्ञान

होता है। **'इस अपेक्षा से कारण-कार्यपना कहा है। जिस प्रकार दीपक और प्रकाश दोनों युगपत् होते हैं, तथापि दीपक हो तो प्रकाश होता है इसलिए दीपक कारण है और प्रकाश कार्य है। उसी प्रकार ज्ञान-श्रद्धान भी हैं।''** मोक्षमार्गप्रकाशक''दिल्ली'से छपा है ना ?

'जब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता, तब तक का ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता।' चाहे सो शास्त्र पढ ले, सीखे परन्तु अन्तर अनुभव दृष्टि करके आत्मा आनन्दमय है – ऐसा अनुभव, प्रतीत न हो। तब तक सब ज्ञान मिथ्याज्ञान है। समझ में आया ? अब ज्ञान की बात करते हैं। देखो, तीसरा श्लोक। ९६ पन्ना।

सम्यग्ज्ञान के भेद, परोक्ष और देशप्रत्यक्ष के लक्षण

तास भेद दो हैं, परोक्ष परतछि तिन मांही;
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं।
अवधिज्ञान मनपर्जय दो हैं देश-प्रतच्छा;
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये जानै जिय स्वच्छा।।३।।

अन्वयार्थ :- (तास) उस सम्यग्ज्ञान के (परोक्ष) परोक्ष और (परतछि) प्रत्यक्ष (दो) दो (भेद हैं) भेद हैं; (तिन मांही) उनमें मति श्रुत मतिज्ञान और श्रुतज्ञान (दोय) यह दोनों (परोक्ष) परोक्ष ज्ञान हैं। (क्योंकि वे) (अक्ष मनतैं) इन्द्रियों तथा मन के निमित्त से (उपजाहीं) उत्पन्न होते हैं। (अवधिज्ञान) अवधिज्ञान और (मनपर्जय) मन:पर्यय ज्ञान (दो) यह दोनों ज्ञान (देश-प्रतच्छा) देशप्रत्यक्ष। (हैं) हैं; (क्योंकि उन ज्ञानों से) (जिय) जीव (द्रव्य क्षेत्र परिमाण) द्रव्य और क्षेत्र की मर्यादा (लिये) लेकर (स्वच्छा) स्पष्ट (जानै) जानता है।

भावार्थ :- इस सम्यग्ज्ञान के दो भेद हैं - (१) प्रत्यक्ष और (२) परोक्ष; उनमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान [१]परोक्ष ज्ञान हैं, क्योंकि वे दोनों ज्ञान इन्द्रियों तथा मन के निमित्त से वस्तु को

१. जो ज्ञान, इन्द्रियों तथा मन के निमित्त से वस्तु को अस्पष्ट जानता है, उसे परोक्ष ज्ञान कहते हैं।

अस्पष्ट जानते हैं। सम्यक्मतिश्रुतज्ञान स्वानुभवकाल में प्रत्यक्ष होते हैं, उनमें इन्द्रिय और मन निमित्त नहीं हैं। अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान [२]देशप्रत्यक्ष हैं, क्योंकि जीव इन दो ज्ञानों से रूपी द्रव्य की द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव की मर्यादापूर्वक स्पष्ट जानता है।

'**सम्यग्ज्ञान के भेद, परोक्ष और...**' प्रत्यक्ष। आत्मा का सम्यग्दर्शन जो हुआ उसके साथ सम्यग्ज्ञान, ज्ञान के भेद (बताते हैं)।

तास भेद दो हैं, परोक्ष परतछि तिन मांही;
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं।
अवधिज्ञान मनपर्जय दो हैं देश-प्रतच्छ्रा;
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये जानै जिय स्वच्छ्रा।।३।।

क्या कहते हैं ? आत्मा में आत्मा की सम्यक्दृष्टि का भान होने पर जो सम्यग्ज्ञान होता है, धर्मी को-अंतरदृष्टिवंत को-आत्मा के दर्शनवंत को। गृहस्थाश्रम में हो या त्यागी हो, आत्मदर्शन हो (तब) साथ में ज्ञान होता है उस ज्ञान के भेद की बात भगवान, आचार्य ने जो कहे हैं, वह 'दौलतरामजी' कहते हैं। अपने घर की बात नहीं कहते।

'**उस सम्यग्ज्ञान के परोक्ष और प्रत्यक्ष दो भेद हैं;...**' सम्यग्ज्ञान के दो भेद। एक प्रत्यक्ष, एक परोक्ष। '**(तिन मांही) मतिज्ञान और श्रुतज्ञान यह दोनों परोक्षज्ञान हैं।**' यहाँ पहली बात व्यवहार से कही है। आत्मा में मति और श्रुत (ज्ञान) होता है, उसमें इन्द्रिय और मन का निमित्त है। आत्मा का अन्दर अनुभव होता है। उसमें निमित्त नहीं है। 'तत्त्वार्थसूत्र' में और व्यवहार शास्त्र में वेदन की बात नहीं की है। समझ में आया ?

२. जो ज्ञान, रूपी वस्तु को द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की मर्यादापूर्वक स्पष्ट जानता है उसे, देशप्रत्यक्ष कहते हैं।

आत्मा गृहस्थाश्रम में भी हो, अन्तर में आत्मज्ञान हुआ है, आत्मदर्शन हुआ है तो जब आत्मा अपने स्वरूप में ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान के भेद को दूरकर, अंतर अनुभव में होता है, तब अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन के काल में यह मति-श्रुत (ज्ञान) प्रत्यक्ष हो जाता है। समझ में आया ? बाकी के काल में मति-श्रुत पर का ज्ञान करता है। वह परोक्ष है। आहा..हा... !

वस्तु चैतन्यसूर्य... इन्द्रिय, मन से प्रत्यक्ष धूल लगता है। यह तो बाहर की वस्तु है। यह जानने में आता है। इन्द्रिय और मन के निमित्त से (पर जानने में आता है)। इससे तो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श जानने में आता है, उससे आत्मा जानने में आता है ? इन्द्रिय और मन के निमित्त से क्या आत्मा जानने में आता है ? इस आँख के द्वारा रूप को देखे। क्या आँख के द्वारा आत्मा को देखता है ? समझ में आया कि नहीं ?

अन्तर में आत्मा का दर्शन हुआ तो अंतरज्ञान में स्व को पकडकर, शांति के वेदन के काल में सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान, पाँचवे गुणस्थान में भी मति-श्रुत का ज्ञान, स्व के अनुभवकाल में स्व की अपेक्षा प्रत्यक्ष हो जाता है। समझ में आया ? आँख बन्द करे तो अंधेरा दिखे। वस्तु के भान बिना कैसे दिखाई दे ? कहा था न ? एक बच्चे की बात कही थी न ? अब दस साल का हुआ है, पहले सात साल का था। 'जामनगर'। महाराज ! आप कहते हो कि, आत्मा देखो। तो हम आँख बन्द करते हैं तो अंधेरा दिखता है। समझे ? वह लडका अब दस साल का हो गया। बहुत प्रश्न करता था, 'आत्मसिद्धि' का प्रश्न किया था। महाराज ! 'आत्मसिद्धि' में १९वीं गाथा में ऐसा आता है कि, केवलज्ञानी छद्मस्थ का विनय करे। केवली विनय क्यों करे ? ऐसा प्रश्न किया था। अभी दस वर्ष हुए है, पहले सात साल का लडका था, तब ऐसा प्रश्न किया था।

महाराज ! आप कहते हो कि, अन्दर आत्मा को देखो। आत्मा है। (मैं) आँख बन्द करता हूँ तो अंधेरा दिखता है और बाहर देखते हैं तो यह धूल दिखती है। भाई ! सात साल का लडका पूछता था।

मुमुक्षु :- मा-बाप होशियार है।

उत्तर :- माँ-बाप नहीं, उसका चाचा होशियार है। माँ-बाप साधारण हैं। अब की बार

प्रेम हुआ। अबकी बार चार दिन 'जामनगर' रहे न ? तो सुना। ओ..हो... ! बात कुछ अलग है। उसका दादा वकील है, वह नहीं मानता था। पहली बार व्याख्यान में आया था, तब कहता था, आत्मा (है नहीं)। फिर (सुना तो कहा), बात कोई और है। लडका उसके चाचे के साथ पढ़ता था। पढते-पढते उसे यह विचार आये। ओ..हो... ! आत्मा-आत्मा कहते हो कि, आत्मा को देखो। क्या देखे ? आँख बंद करते हैं तो अंधेरा दिखता है, बाहर देखते हैं तो यह दिखता है। हमे क्या देखना ? मैंने कहा, भैया ! सुन ! सुन ! अंधेरा दिखता है, किसमें दिखता है ? क्या अंधेरे में अंधेरा दिखता है ? तूने कभी विचार किया है ? अंधेरा अंधेरे में दिखता है ? या अंधेरा चैतन्यप्रकाश में दिखता है ? चैतन्यप्रकाशमय है उसमें, यह अंधेरा है, मैं अंधेरा नहीं। समझ में आया ? लडका बहुत चालाक है। अबकीबार बहुत प्रश्न करता था, बहुत प्रश्न करता था। समकित कैसे प्राप्त हो - उसकी बात तो करते नहीं - ऐसा पूछा था। मैंने कहा, भाई ! वह बात तो बहुत बार आती है, तुझे याद नहीं रहती।

आत्मा वस्तु है, भाई ! अंधेरा दिखता है, वह अंधेरा कौन देखता है ? अंधेरा कौन देखता है ? अंधेरे को अंधेरा देखता है ? ज्ञान। अंदर ज्ञान है, उस ज्ञान की सत्ता की मौजूदगी में अंधेरा दिखता है। अंधेरे की मौजूदगी में अंधेरा नहीं दिखता। ज्ञान की मौजूदगी में अंधेरा दिखता है। ज्ञान की मौजूदगी आत्मा है, अंधेरा पर है। समझ में आया ? लेकिन कभी विचार करने का अवसर लिया ही नहीं। अनादि काल से ऐसा अंधेरा ही अंधेरा चला है। केवली कैसे विनय करे ? तेरी बात सच है। 'आत्मसिद्धि' की १९वीं गाथा में लिखा है - ऐसा कहकर पूछता था। चालाक लडका है। समझ में आया ? क्या कहते हैं ?

मति-श्रुतज्ञान दोनों परोक्ष है, यहाँ लिखा है। भावार्थ में लिखेंगे। लेकिन आत्मज्ञान के समय, अनुभव के समय वह ज्ञान प्रत्यक्ष हो जाता है। क्यों ? कि, स्वआश्रयमें वेदन है, तब प्रत्यक्ष है। पराश्रय में ख्याल है तो परोक्ष हो गया। प्रत्यक्ष और परोक्ष, कहाँ माथापच्ची करनी ? संसार की माथापच्ची हो तो सब करे। पाँच-पचास हजार प्राप्त करने को कितनी महेनत करता है ? देश (छोडकर) परदेश जाये, महेनत करे, मजदूरी करे।

मुमुक्षु :- इन्द्रिय का ज्ञान प्रत्यक्ष होगा।

उत्तर :- धूल में भी होता नहीं। आत्मा का ज्ञान अपने से होता है, उसका नाम प्रत्यक्ष। इन्द्रिय और मन से पर का ज्ञान करे, वह तो परोक्ष है। इस आँख से रूप देखा तो रूप प्रत्यक्ष है ? वह तो परवस्तु है। यह शब्द परवस्तु है। देखो ! आत्मा का अंदर ज्ञान करके...

मुमुक्षु :- रूपये बैंक में रखे हो उसमें गलती होवे ?

उत्तर :- ज्ञान में ख्याल है कि, पाँच हजार रखे हैं। बस ! इतना ख्याल (है)। इस ख्याल में भूल नहीं। चीज रहे या नहीं, उसके अधिकार की बात है ? वे ऐसा कहना चाहते हैं कि, (पैसे) प्रत्यक्ष है न ? प्रत्यक्ष कहाँ है ? प्रत्यक्ष तो उस ज्ञान को कहते हैं, जिसमें पर का आश्रय नहीं हो। प्रत्यक्ष ज्ञान इसे कहते हैं कि, जिसमें पर का आश्रय हो नहीं। पर का ज्ञान करता है, उसमें तो इन्द्रिय का आश्रय है। प्रत्यक्ष कहाँ से आया ? वह कहते हैं, देखो ! नीचे स्पष्टीकरण आयेगा।

'अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान यह दोनों देशप्रत्यक्ष हैं; (क्योंकि उन ज्ञानों से) जीव, द्रव्य और क्षेत्र की मर्यादा लेकर स्पष्ट जानता है।'

'भावार्थ :- इस सम्यग्ज्ञान के दो भेद हैं - (१) प्रत्यक्ष और (२) परोक्ष। उनमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं।' नीचे स्पष्टीकरण है। **'जो ज्ञान इन्द्रियों तथा मन के निमित्त से वस्तु को अस्पष्ट जानता है...'** अस्पष्ट जानता है, इसलिये परोक्ष ज्ञान कहते हैं।

'सम्यक्मतिश्रुतज्ञान स्वानुभवकाल में प्रत्यक्ष होते हैं, उसमें इन्द्रिय और मन निमित्त नहीं हैं।' देखो ! इसमें से लिखा है। कोई कहते हैं, उसमें नहीं था। लेकिन उसमें है। निश्चय भाव उसमें है। यह व्यवहार से बात कही है। निश्चय से तो आठ वर्ष की बालिका हो, आठ वर्ष की लडकी, उसे सम्यग्दर्शन और धर्म की पली अवस्था प्रकट हो तो उसे भी अंतर में ध्यानकाल में अपने आत्मा का ज्ञान, आनंद का वेदन, राग और निमित्त की अपेक्षा बिना होता है, उसका नाम सम्यग्ज्ञान स्व की अपेक्षा से कहने में आता है। कठिन बात (है)। समझ में आया ?

'सम्यक्मतिश्रुतज्ञान स्वानुभवकाल में...' स्वानुभव अर्थात् आत्मा के आनंद के अनुभव के काल में। समझ में आया ? गृहस्थाश्रम में हो, राजपाट आदि हो लेकिन अंतर

सम्यग्दर्शन, आत्मा का भान हुआ है। जब ध्यान में बैठते हैं तो अंतर के अनुभव में सब भूल जाते हैं, रागादि भूल जाते हैं, शरीरादि सब भूल जाते हैं। अंतर आत्मा में ज्ञान एकाग्र हो जाता है। उसमें आत्मा के अनुभव में अतीन्द्रिय आत्मा के आनन्द का वेदन आना, वह ज्ञान प्रत्यक्ष है। सम्यग्दृष्टि पशु को भी इतना ज्ञान प्रत्यक्ष होता है। भगवान के समय में समवसरण में पशु भी आते थे कि नहीं ? समवसरण में है या नहीं ? देखो न ! हाथी, वाघ, नाग, सब भगवान के समवसरण में आते थे। सुना है या नहीं ? असंख्य पशु अभी सम्यग्ज्ञानी हैं। अढाई द्वीप बहार स्वयंभूरमण समुद्र है न ? स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य पशु श्रावक हैं। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहा है। असंख्य पशु हैं। यहाँ तो मनुष्य को भान नहीं होता है, वह तो पशु है। वह पूर्व का भान करके अंदर आ जाता है। सम्यग्ज्ञानी है। समझ में आया ? हजार-हजार योजन का मच्छ। चार हजार हाथ का लंबा शरीर। स्वयंभूरमण समुद्र अन्तिम है न ? असंख्य द्वीप-समुद्र हैं उसमें अन्तिम समुद्र है। उसमें असंख्य पशु, मगरमच्छ, मच्छी सम्यग्दृष्टि है, आत्मज्ञानी है। वह भी अंतर में ध्यान करके आत्मा का ज्ञान अनुभव में प्रत्यक्ष कर लेते हैं। समझ में आया ?

ज्ञान की अपनी पर्याय की ताकत कितनी है ? उसकी उसे खबर नहीं। समझ में आया ? दूसरा ज्ञान उसे कहाँ है ? मछली को व्यापार-धंधे का ज्ञान होता है ? मेंढक को सम्यग्ज्ञान होता है। कौए को, बंदर को, हाथी को (होता है)। असंख्य हैं, असंख्य समुद्र हैं। भगवान ने ज्ञान में - केवलज्ञान में सब देखा है। समझ में आया ? आत्मा दे देते हैं, ऐसा नहीं। हम तो अन्तर में आनंदमूर्ति आत्मा है, वहीं मैं आत्मा हूँ। रागादि, विकल्प उठते हैं, वह मैं नहीं। ऐसा भान पशु में भी है। हाथी है ना ? त्रिलोकमंडन हाथी। 'रावण' का हाथी था न ? चौरासी लाख हाथी थे, उसका अग्र था। त्रिलोकमंडन हाथी। जब 'रामचंद्रजी', 'लक्ष्मणजी' ने लंका पर विजय प्राप्त की तो हाथी को 'अयोध्या' घर ले आये। हाथी को 'अयोध्या' लाये हैं। देखो हाथी !

यहाँ 'राम', 'लक्ष्मण', 'शत्रुघ्न' और 'भरत' चारों दर्शन के लिये जाते हैं। देखो चार। आभूषण पहने हैं। 'भरत' को वैराग्य हुआ। 'रामचंद्रजी' का भाई। अंदर शांति वीतरागता हुई।

हाथी को भान हुआ। अरे... ! मैं तो उसका मित्र था। 'भरत' और मैं दोनों मित्र थे। ये 'भरत' राजकुमार हुआ, मैंने माया की तो हाथी हुआ। हाथी को जातिस्मरण हुआ। आहा..हा... ! है ? देखो ! आभूषण निकाल दिये। सब निकालकर अकेले (खडे हैं)। हमारा आत्मा पूर्व में 'भरत' के साथ मित्र था। अरे... ! आत्मा क्या किया ? मैं पशु हो गया। ऐसा आत्मज्ञान हुआ, जिसमें जातिस्मरण (हुआ)। वैराग्य... वैराग्य। अन्तिम में समाधिमरण करके स्वर्ग में गया।

'त्रिलोकमंडन' हाथी पहले 'रावण' का (था), वह मधुवनमें से मिला था। मधुवन है न ? उसमें से शोध करके हाथी मिला था। बडा जंगली हाथी। वह भी वैराग्य पाकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। पन्द्रह-पन्द्रह दिन के बाद भोजन लेता है। किसी की दरकार नहीं। समझ में आया ? पशु भी आत्मज्ञान और आत्मदर्शन करते हैं। आत्मा है या नहीं ? पशु का शरीर तो भिन्न है, शरीर से क्या है ? यह तो मिट्टी है। ऐसा अनुभव मति-श्रुतज्ञानी सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में भी प्रत्यक्ष आत्मा का अनुभव करते हैं। उस समय मति-श्रुत को प्रत्यक्ष कहने में आता है।

'**अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान यह दोनों देशप्रत्यक्ष हैं;...**' थोडा जानता है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव जाने, मर्यादापूर्वक जानता है। अब चौथी गाथा देखो। अपने चौथी गाथा आयी।

सकल-प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण और ज्ञान की महिमा

सकल द्रव्यके गुन अनंत, परजाय अनंता;
जानै एकै काल, प्रगट केवलि भगवन्ता।
ज्ञान समान न आन जगतमें सुखको कारन;
इह परमामृत जन्मजरामृति रोग निवारन।।४।।

अन्वयार्थ :- (जिस ज्ञानसे) (केवलि भगवन्ता) केवलज्ञानी भगवान (सकल द्रव्यके)

छहों द्रव्यों के (अनन्त) अपरिमित (गुन) गुणों को और (अनन्ता) अनन्त (परजाय) पर्यायों को (एकै काल) एक साथ (प्रगट) स्पष्ट (जानै) जानते हैं (उस ज्ञानको) (सकल) सकलप्रत्यक्ष अथवा केवलज्ञान कहते हैं। (जगत में) इस जगतमें (ज्ञान समान) सम्यग्ज्ञान जैसा (आन) दूसरा कोई पदार्थ (सुख कौ) सुख का (न कारन) कारण नहीं है। (इहि) यह सम्यग्ज्ञान ही (जन्मजरामृति-रोग-निवारन) जन्म, जरा (वृद्धावस्था) और मृत्युरूपी रोगों को दूर करने के लिये (परमामृत) उत्कृष्ट अमृत समान है।

भावार्थ - (१) जो ज्ञान तीनकाल और तीनलोकवर्ती सर्व पदार्थो (अनन्तधर्मात्मक सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को) प्रत्येक समय में यथास्थित, परिपूर्णरूप से स्पष्ट और एकसाथ जानता है उस ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं। जो सकलप्रत्यक्ष है।

(२) द्रव्य, गुण और पर्यायों को केवली भगवान जानते हैं, किन्तु उनके अपेक्षित धर्मों को नहीं जान सकते-ऐसा मानना असत्य हैं। तथा वे अनन्त को अथवा मात्र अपने आत्मा को ही जानते हैं, किन्तु सर्व को नहीं जानते - ऐसा मानना भी न्यायविरुद्ध है। केवली भगवान सर्वज्ञ होने से अनेकान्त स्वरूप प्रत्येक वस्तु को प्रत्यक्ष जानते हैं।

(-लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका प्रश्न-८७)

(३) इस संसार में सम्यग्ज्ञान के समान सुखदायक अन्य कोई वस्तु नहीं है। यह सम्यग्ज्ञान ही जन्म, जरा और मृत्युरूपी तीन रोगों का नाश करने के लिये उत्तम अमृत समान है।

'सकल प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण और ज्ञान की महिमा' देखो !

सकल द्रव्यके गुन अनंत, परजाय अनंता;
जानै एकै काल, प्रगट केवलि भगवन्ता।
ज्ञान समान न आन जगतमें सुखको कारन;
इह परमामृत जन्मजरामृति रोग निवारन।।४।।

देखो ! जन्म-मरण, रोग के निवारण में आत्मज्ञान, ज्ञानस्वरूप एक कारण है। देखो !

इतना वजन दिया है। वजन देते हैं, क्या कहते हैं ? वजन कहते हैं ? जोर देते हैं। समझ में आया ? देखो, नीचे।

अन्वयार्थ :- '**(जिस ज्ञान से) केवलज्ञानी भगवान...**' केवली परमात्मा को केवलज्ञान होता है। पहले सम्यग्दर्शन हुआ था, बाद में सम्यग्ज्ञान हुआ, और सम्यग्ज्ञान में आगे बढकर केवलज्ञान हुआ। यह केवलज्ञान, ज्ञान की पाँचवीं सम्यक् पर्याय है। यह पर्याय सम्यक्ज्ञान है। मति-श्रुत भी सम्यग्ज्ञान है, अवधि, मन:पर्यय भी सम्यग्ज्ञान है। अवधि से रूपी देखते हैं, मन:पर्यय से दूसरे के मन के भाव को देखते हैं। केवली तो तीन काल को देखते हैं। णमो अरिहंताणं। ये अरिहंत भगवान केवलज्ञानी हैं और सिद्ध भगवान केवलज्ञानी हैं।

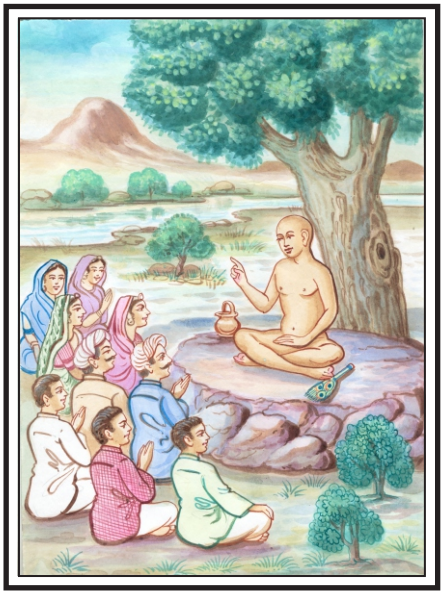

अरिहंत भगवान महाविदेहक्षेत्र में बिराजते हैं। 'सीमंधर' परमात्मा जो यहाँ भगवान को स्थापित किये हैं, वे परमात्मा बिराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में अभी अरिहंत हैं। वे भी केवलज्ञानी हैं। तीन काल, तीन लोक को जानते हैं। सिद्ध भगवान हुए। चौबीस तीर्थंकर हैं, वे सिद्ध हो गये। उनको अभी शरीर नहीं है, अशरीरी हो गये। उपर लोकाग्र में बिराजते हैं। दोनों को केवलज्ञान है। कैसा केवलज्ञान है ?

'**(सकल द्रव्य के) छहों द्रव्यों के...**' देखो ! केवलज्ञानी भगवान ने सब द्रव्य अर्थात् भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। उनके अपरिमित गुण देखे हैं। अनंतगुण ! और अनंती पर्याय। भगवान के ज्ञान में तीन काल तीन लोक सब प्रत्यक्ष दिखने में आया। यह केवलज्ञान कैसे उत्पन्न होता है ? आत्मा का सम्यग्दर्शन और ज्ञान का अनुभव करते-करते उत्पन्न होता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? देखो है न ?

'**एक साथ (प्रकट) स्पष्ट जानते हैं...**' 'प्रकट' शब्द पडा है न ? आत्मा में ज्ञान की इतनी ताकत है कि, इस ज्ञान का अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान (हुआ), बाद में स्वरूप में स्थिरता-चारित्र अंदर में एकाग्रता (करते हैं तो) केवलज्ञान हो गया। एक सैकेण्ड के असंख्यवें भाग में भगवान तीन काल तीन लोक देखते हैं। समझ में आया ? सकलप्रत्यक्ष प्रकट केवलज्ञान है।

'**इस जगत में सम्यग्ज्ञान जैसा दूसरा कोई पदार्थ सुख का कारण नहीं है।**' देखो ! समझ में आया ? पुण्य-पाप का भाव है, वह सुख का कारण नहीं है - ऐसा उसमें आया। आहा..हा... ! क्या कहते हैं ? देखो ! ये तो 'दौलतरामजी' गृहस्थाश्रम में रहे, भगवान के ज्ञान का जो बोध हुआ उसे कहते हैं। '**इस जगत में सम्यग्ज्ञान जैसा...**' अपने शुद्ध स्वरूप का - आत्मा का ज्ञान, दूसरा (ज्ञान) नहीं, शास्त्रज्ञान हो, ना हो, पर के ज्ञान के साथ संबंध नहीं। अपने आत्मा का अंतरज्ञान हुआ उसके समान, - '**सम्यग्ज्ञान जैसा दूसरा कोई पदार्थ सुख का कारण नहीं है।**' आत्मा में सम्यग्ज्ञान ही समाधान और सुख का कारण है - ऐसा कहते हैं। स्त्री, कुटुंब, पैसा सुख का कारण नहीं है - ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- धूल में भी सुख नहीं है।

आत्मा का ज्ञान अन्तर में सम्यक् हुआ, उसके अलावा कोई सुख का कारण जगत में है नहीं - ऐसा भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर परमात्मा कहते हैं। कहो, भाई ! अच्छे पुत्र हो तो सुख का कारण है या नहीं ? नहीं ? आत्मा को पुत्र ही नहीं है। आत्मा का पुत्र क्या है ? उसने जन्म दिया है ? उसका आत्मा भिन्न है, उसका शरीर का रजकण भिन्न है, शरीर जड़ है। क्या आत्मा ने उसे उत्पन्न किया है ? आत्मा उत्पन्न करे-अज्ञान और राग-द्वेष। अथवा उत्पन्न करे-ज्ञान और आनन्द। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं... आहा..हा... ! एक आत्मा पर से निराला (है) - ऐसा ज्ञान हुआ तो इस ज्ञान के समान जगत में सुख का कारण कोई है नहीं। आनन्द की उत्पत्ति का कारण यह ज्ञान है।

दुनिया में भी जितनी समझ है, उतना उसे समाधान रहता है या नहीं ? वह तो संसार है, यह तो आत्मा की बात है। ओ..हो... ! (इनका) शरीर भी मोटा है, पैसा भी बहुत है, भले ही लडके के पास है, लेकिन संतोष तो होता है न ? किसका लडका ? (इनका)। सूझन है, सूझन। शरीर में सूझन नहीं आती है ? सूझन आती है तो दु:ख होता है और सूझन अन्दर में जाये तो... शरीर में सूझन होती है ना ?

आत्मा में शांति है। धूल में-पैसे में (नहीं है)। पुण्य-पाप का नया भाव करता है न ? वह भी विकार है, उसमें शांति-सुख नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहा..हा... ! पूर्व के पुण्य के फल में तो सुख नहीं है, लेकिन वर्तमान नया पुण्य उत्पन्न करे, कषाय मंद (करे), दया, दान, भक्ति शुभराग है, उसमें भी सुख नहीं - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहा..हा... ! कैसे होगा ? भाई ! शरीर में रोग आता है उसके लिये नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि, भगवान आत्मा में अन्दर दल चैतन्यशांति पडी है, उसका जो ज्ञान है, उसके समान कोई सुख का कारण नहीं। तीन काल में कोई सुख का कारण नहीं। इन्द्र का अवतार या चक्रवर्ती का भव, सुख का कारण नहीं है। समझ में आया ? आ..हा... ! क्या कहते हैं ? देखो ना ! '**दूसरा (कोई पदार्थ) सुख का कारण नहीं है।**'

'**यह सम्यग्ज्ञान ही (जन्म-जरा-मृति रोग...)**' देखो ! '**जन्म, जरा...**' अर्थात् '**(वृद्धावस्था) और मृत्युरूपी रोगों को दूर करने के लिये...**' ऐसा कहा। मृत्युरोग ऐसा कहा। '**दूर करने के लिये (परमामृत)...**' **परमामृत 'उत्कृष्ट अमृत समान है।'** आत्मा अंतर में ज्ञान होना यह जन्म-जरा-मरण का नाश होने के महान उपाय है। आहा..हा... ! शास्त्र की पढाई भी नहीं, दुनिया का ज्ञान भी नहीं। सब दु:ख का कारण है। कहो, बराबर होगा यह ?

कहते हैं... आ..हा... ! '**(परमामृत)...**' ऐसा शब्द पाठ में लिया है। 'दौलतरामजी' पंडित। परमामृत। भगवान आत्मा अन्तर अनाकुल आनन्दस्वरूप (है), उसका ज्ञान परम अमृत है कि, जिस ज्ञान से जन्म, जरा मृत्यु का रोग नाश का यह ज्ञान उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं। समझ में आया ? आत्मज्ञान-आत्मा का ज्ञान जन्म, जरा, मरण का नाश करनेवाला है - ऐसा कहते हैं। जिसने अन्तर आत्मा की कीमत की, ओ..हो... ! मैं तो

परमस्वरूप परमात्मा हूँ। जैसे सिद्ध भगवान (है), 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' आता है न ? 'बनारसीदास' में आता है। 'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो, चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो, मोह महातम आत्म अंग, कियो परसंग महातम घेरो' अरे... ! मैं सिद्ध समान आत्मा (हूँ)। मैंने ही राग और विकल्प के साथ एकत्व करके दु:ख को उत्पन्न किया। 'ज्ञानकला अब ऊपजी मोको, ज्ञानकला ऊपजी अब...' देखो ! 'बनारसीदास' गृहस्थाश्रम में रहते थे। पहले श्रृंगारी थे, महाभोगी, व्यभिचारी (थे)। बाद में आत्मधर्म पाया, सब पलट गया। समझ में आया ? 'ज्ञानकला ऊपजी अब मोकू' कहूँ गुँ नाटक आगम केरो, याही परसाद सधै शिवमारग, वेगे मिटे घटवास वसेरो – इस घट में–मट्टी में बसना, वह सम्यग्ज्ञान द्वारा बसना छूट जायेगा। अब इसमें रहेंगे नहीं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो...' मैं तो सिद्ध समान आत्मा हूँ – ऐसा सम्यग्दृष्टि पहले से ही मानते हैं। 'ज्ञानकला ऊपजी अब मोकू' – मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। मैं राग नहीं, पुण्य नहीं, शरीर नहीं। 'कहूँ गुण नाटक आतम केरो' मैं समयसार नाटक का वर्णन करूँगा। 'तास प्रसाद' सम्यग्ज्ञान का प्रसाद से। 'सधे शिवमारग' मोक्ष का मार्ग। 'वेगे मिटे घटवास वसेरो' – इस माँस में रहना, हड्डी में रहना, हमारे सम्यग्ज्ञान द्वारा इस घट में बसना बंद हो जायेगा। समझ में आया ? आहा..हा... ! समझे ?

मृति उसमें मृत्यु कहा है न ? जन्म, जरा, मृति शब्द इसमें लिखा है। दूसरे में मृत्यु शब्द है। ऐसा क्यो किया ? भाषा तो हिन्दी है न ? हिन्दी में क्यो (किया) ? मृति होना चाहिए न ? यह भाषा तो हिन्दी है न ? जन्म, जरा और मृत्यु – ऐसा जो रोग, वह आत्मज्ञान के द्वारा (मिटता है)। क्योंकि आत्मज्ञान परम अमृत है। अंतर स्वरूप का भान अमृत है, उससे सब जन्म, जरा, मरण का रोग नाश होता है। इसके अलावा दूसरा कोई उपाय है नहीं। विशेष कहेंगे...

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)